निश्चय से अपने परम आत्मा की श्रद्धा, वह वास्तविक श्रद्धा और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह वास्तविक श्रद्धा नहीं, इसका नाम कथंचित्। कहो, समझ में आया? वीतरागमार्ग, बापू! सूक्ष्म है, भाई! इसमें अनन्त काल में इस बात को दृष्टि में लिया नहीं। आहा..! निज परमात्मा-ऐसा आचार्य ने शब्द प्रयोग किया है न? पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि थे, पंच महाव्रतधारी दिगम्बर आत्मध्यानी अन्तर में उतरे हुए। वे कहते हैं कि निज परमात्मतत्त्व की श्रद्धा। स्वयं अखण्ड आनन्दमूर्ति पूर्ण स्वरूप है। परम आत्म अर्थात् परम ध्रुवस्वरूप पारिणामिकभाव, ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, त्रिकालभाव। आहा..हा..! उसके सन्मुख होकर, उसकी अन्तर सम्यक् दृष्टि करना, उसे व्यवहाररत्नत्रय की अपेक्षा नहीं है। ऐसा वह सम्यग्दर्शन भाव है। समझ में आया?

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्ज्ञान... देखो! यह आचार्य! टीका तो कितनी सरस है परन्तु लोगों को निश्चय सत्य क्या है, उसकी खबर नहीं होती, बाहर में भटका भटक करके मानो कल्याण हो जायेगा। आहा..हा..! भगवान आत्मा सर्वज्ञदेव, तीर्थंकरदेव और पूर्व आचार्य अनन्त इसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऊपर आया है न? पूर्वाचार्यों ने परम वीतराग सर्वज्ञ के शासन में यह कथन किया है। भगवान आत्मा... देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो नहीं, क्योंकि विकल्प है। राग का भाग व्यवहाररत्नत्रय तीन का शामिल आवे, वह विकल्प है, वह नहीं। एक समय की पर्याय का अंश जो विकास है, उसकी श्रद्धा भी नहीं, क्योंकि पर्याय के अंश की बुद्धि-श्रद्धा, वह तो मिथ्याश्रद्धा है, यह तत्त्व तो उसमें आया नहीं। समझ में आया? गजब!

निज परमतत्त्व का श्रद्धान और उसका ज्ञान। अपना निजस्वभाव ध्रुव, ज्ञान और आनन्द है, उसका ज्ञान। उस ज्ञान में उसे शास्त्रज्ञान की अपेक्षा की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। ए.. देवानुप्रिया! यह ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इसमें से दूसरा कुछ सरल हो, सके ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग इसका यह हो। मुँह से खाया जाये, इसका सरल, ऐसा कुछ

है ? आँख में डाला जाये या कान में डाला जाये ऐसा (कुछ है) ? ऐसा प्रश्न है इसका। आहा..हा.. ! मार्ग तो भगवान अनादि तीर्थंकर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने यह कहा है। इससे विरुद्ध कहे, वह वीतराग के मार्ग की श्रद्धा नहीं है। ऐसी बात है। जगत को सत्य सुनने को नहीं मिलता, वह कब श्रद्धा करे और कब पहिचाने और कब अनुभव करे ? भगवान ! तेरा स्वरूप तो पूर्ण है न ! निज परमात्म शब्द प्रयोग किया है। अरिहन्त तीर्थंकरदेव को परद्रव्य है, परद्रव्य की श्रद्धा, धारणा शीघ्रता से तजो – ऐसा श्रीमद् में आता है। ३१ पृष्ठ पर (आता है)। भाई ने पढ़ा है या नहीं ? सन्त की वाणी, अमृतवाणी सन्त की, उसमें आता है। परद्रव्य की श्रद्धा शीघ्रता से तजो, ऐसा आता है। भगवान कहते हैं कि मेरी श्रद्धा शीघ्रता से छोड़; तेरी श्रद्धा कर – ऐसा कहते हैं। लो ! ऐ.. स्वरूपचन्दभाई ! पुस्तक मिली है या नहीं ? नहीं इसमें ? यह मिली है या नहीं ? नहीं मिली। इसमें है, ३१ पृष्ठ पर है। देखो !

'परद्रव्य की धारकता शीघ्रता से तजो।' तीर्थंकरदेव अरिहन्त ऐसे होते हैं और उनकी ऐसी श्रद्धा होती है, यह धारकता शीघ्रता से तजो, क्योंकि यह तो विकल्प है – राग है। आहा..हा.. ! मार्ग तो मार्ग प्रभु का ! 'परद्रव्य की रमणता शीघ्रता से तजो।' पर अरिहन्त तीर्थंकरदेव का भी विकल्प और उनकी श्रद्धा, वह राग है। उनकी रमणता छोड़। आहा..हा.. ! 'परद्रव्य की ग्राहकता शीघ्रता से तजो।' भगवान निज द्रव्य त्रिकाली ज्ञायक अविनाशी स्वभावभाव का भण्डार, ऐसा परमात्मा अपना है। आहा..हा.. ! उसका ज्ञान, वह ज्ञान है और उस ज्ञान को शास्त्रज्ञान और तीर्थंकरदेव ने कही हुई वाणी का ज्ञान, उसकी भी जिसे अपेक्षा नहीं है। नवरंगभाई ! आहा..हा.. ! है ? देखो !

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान.... निज परमात्मतत्त्व का सम्यक्ज्ञान, वह सम्यक् सबको लागू करना। निज परमात्मतत्त्व का सम्यक् अनुष्ठान। चारित्र किसे कहना ? कि भगवान आनन्द अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु का जो दर्शन और ज्ञान हुआ, उसमें अन्दर लीनता, अतीन्द्रिय आनन्द में लीनता (होना), उसे जैनदर्शन में चारित्र और अनुष्ठान कहा जाता है। आहा..हा.. !

यह पद्मप्रभमलधारिदेव पंच महाव्रतधारी मुनि जंगल में बसनेवाले दिगम्बर मुनि थे। यह कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा हुआ, परमात्मा का कहा हुआ, कुन्दकुन्दाचार्य के कहे हुए की यह टीका करते हैं। भाई ! तेरे मार्ग की रीति तूने सुनी नहीं, भाई ! विपरीत मार्ग में जाकर

हम मार्ग में हैं, ऐसा माना है। आहा..हा..! निज परमात्मतत्त्व का अनुष्ठान। जेठाभाई! यह अनुष्ठान कहा है। यह अनुष्ठान है। पंच महाव्रत में विकल्प-फिकल्प, वह अनुष्ठान (नहीं), वह तो राग है, जहर है। आहा..हा..! वीतराग का मार्ग सुनना कठिन पड़ता है। समझ में आया?

निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग,... शुद्धरत्नत्रय—वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी लीनता, यह शुद्धरत्नत्रय है। इसे शुद्ध मोक्ष का मार्ग कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय बीच में विकल्प (आवे), वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है, ऐसी भगवान पुकार करते हैं। जैनशासन में यह प्रकार है। समझ में आया? वह **शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग, परम निरपेक्ष होने से...** अब इसका नीचे अपने अर्थ है न? वह शून्य, इसका नोट (पादटिप्पण) नीचे है, देखो! **शुद्धरत्नत्रय, अर्थात् निज परमात्मतत्त्व की सम्यक्श्रद्धा, उसका सम्यक्ज्ञान...** उसका ज्ञान—भगवान आत्मा का ज्ञान—आहा..हा..! **और उसका सम्यक्-आचरण,...** भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का धाम है, उस आनन्द का आचरण, अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द में आचरण-रमना, **वह पर की तथा भेदों की लेश भी अपेक्षारहित होने से....** निमित्त की भी जिसमें अपेक्षा नहीं, भेदों की भी जिसमें अपेक्षा नहीं, गुण-गुणी के भेद और पर्यायवान तथा पर्याय के भेद की भी अपेक्षा जहाँ नहीं। आहा..हा..!

कहते हैं कि **पर की तथा भेदों की लेश भी अपेक्षा...** नहीं। किंचित् अपेक्षा नहीं। क्योंकि परमनिरपेक्ष कहा है न? आहा..हा..! कहाँ गया इसमें स्याद्वाद? ऐसे भी होता है और ऐसे भी होता है। ऐसे ही होता है, दूसरे प्रकार से नहीं होता, इसका नाम स्याद्वाद है। ऐ.. देवानुप्रिया! हाँ, करता है, क्या करे परन्तु वहाँ? आहा..हा..! अभी नहीं कहे, फिर कहेंगे, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

वह शुद्धरत्नत्रय, मोक्ष का उपाय है। बाकी दया, दान, व्रत के भाव, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव, शास्त्र का ज्ञान, वह सब अशुद्धरत्नत्रय—शुभविकल्प, राग है। आहा..हा..! जगत को सुनना कठिन पड़े। समझ में आया? पोपटभाई! ऐसा मार्ग है, भाई! लोग तो ऐसा ही कहें, हों! यह सोनगढ़वालों ने ऐसा किया। परन्तु यह भगवान क्या कहते हैं, वह सुन न! सोनगढ़वालों का सोनगढ़ के पास रहा। ऐ.. पण्डितजी! नहीं समझना,

भगवान क्या कहते हैं नहीं सुनना, नहीं समझना। अपना माना हुआ कक्का घोंटना। यह वीतरागमार्ग में नहीं चलता। यह तो सर्वज्ञ जिनका शासन चलता है, परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा का शासन है। समझ में आया?

उस शुद्धरत्नत्रय का फल,.... अब क्या कहते हैं? जो मोक्ष होता है, वह उस शुद्धरत्नत्रय के कारण होता है। व्यवहाररत्नत्रय के कारण नहीं। लो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ८०वीं गाथा में क्या कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा? कहाँ कहा? क्या कहा? अरिहन्त ने क्या कहा? अरिहन्त को जानकर अपने को जाने, वह मोहक्षय का (उपाय है)? और कहाँ गप्प मारे! नवनीतभाई कहते हैं, ठीक प्रश्न (निकालते हैं)।

मुमुक्षु : हाँक रखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँकते नहीं, भाई दूसरा कहते हैं। प्रचलित प्रवाह को तोड़ना, ऐसा इनका प्रश्न है, ऐसा भाई कहते थे। कहते हैं, क्या कहा? बाद में क्या कहा? 'जो जानता अरहन्त को,' इसका अर्थ क्या? यह तो पहले आ गया कि इसमें देव-गुरु, अरिहन्त परमात्मा का केवलज्ञान जगत में है, ऐसा जिसने विकल्प से निर्णय किया है, वह निर्णय छोड़कर स्वद्रव्य के आश्रय से निर्णय करे, तब सम्यक्त्व होता है। उसमें-टीका में है। समझ में आया? यह तो अधिक स्पष्ट करने को करते हैं। यह तो प्रश्न नारद है। खोटा है, ऐसा इसे नहीं, परन्तु जरा अधिक कुछ कुछ है, ऐसा कुछ बताना हो न कि मुझे ऐसा... आहा..हा..!

कहते हैं, भगवान आत्मा निज शुद्ध आनन्द का धाम अतीन्द्रिय रसकन्द के सन्मुख की अन्तर्मुख की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह एक ही मार्ग है और एक ही मार्ग से मोक्ष का कार्य होता है। दो मोक्षमार्ग है और दो मोक्षमार्ग का फल मोक्ष है, (ऐसा नहीं है)। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में आता है। भाई! निश्चय और व्यवहाररत्नत्रय दोनों से मोक्ष होता है। वह तो व्यवहार का, प्रमाण का ज्ञान कराया है। क्या हो? जगत लुटाया है। अनन्त काल में ऐसा मनुष्य देह मिला जैन में-वाड़ा में जन्म (हुआ), तथापि जैन परमेश्वर का क्या कहना है, इसकी खबर नहीं और इस खबर के बिना यह व्रत, तप और साधुओं को लेकर

बैठे, वे सब ईकाईरहित शून्य हैं। चार गति में भटकने के वे सब आचरण हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : किसी को दूध-पाक नहीं पचता हो तो फिर....

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटी चाहिए या कंकड़? अनाज चाहिए या कंकड़? वे तो कंकड़ हैं। कहो, समझ में आया या नहीं? अनाज चाहिए न? अनाज चाहिए न, अर्थात् श्रद्धा तो पक्की चाहिए न? चारित्र अन्दर निर्बल हो, ऐसा। अभी चौथे गुणस्थान में चारित्र न हो। आत्मा का ज्ञान हो, आत्मा का दर्शन हो, चारित्र न हो। पूरा मोक्षमार्ग ही वह है। आत्मा के इस सम्यग्दर्शनरहित के व्रत और तप, वे सब विपरीत मार्ग में हैं। मिथ्यात्व के मार्ग में हैं, अज्ञान के मार्ग में, संसार के मार्ग में हैं। समझ में आया? आहा..हा..!

कहते हैं, **उस शुद्धरत्नत्रय का फल, शुद्ध आत्मा की पूर्ण प्राप्ति,....** शुद्ध आत्मा की (पूर्ण प्राप्ति)। है न? शुद्ध आत्म उपलब्धि। स्व आत्म-उपलब्धि है न? अर्थात् पूर्ण प्राप्ति, ऐसा। आत्मा पूर्ण दशा को प्राप्त हो, इसका नाम मोक्ष। परन्तु इस मोक्ष का कारण यह शुद्धरत्नत्रय है। कहो, समझ में आया? लो! यह गाथा पूरी हुई। परमनिरपेक्ष में बहुत वजन है। जिसे स्व का आश्रय लेकर दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसे पर के आश्रय की निमित्त की, विकल्प की बिल्कुल अपेक्षा नहीं है। निश्चय से उनकी अपेक्षा नहीं है, व्यवहार से हो, वह तो जाननेयोग्य है। समझ में आया? आहा..हा..!

अब, दूसरी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं— स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका की है। मुनि थे, दिगम्बर जंगलवासी थे। तीर्थंकर की परम्परा के पथानुगामी सच्चे मुनि थे। सच्चे मुनि थे। मात्र द्रव्यलिंग नग्नपना और पंच महाव्रत के विकल्प, वह तो द्रव्यलिंगी कहलाता है और जिसके पंच महाव्रत के विकल्प में भी ठिकाना नहीं, वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं कहलाता। समझ में आया? ये (टीकाकार मुनि) भावलिंगी सन्त थे, वे यह श्लोक बनाते हैं।

श्लोक-९

अब, दूसरी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए, टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं—

(पृथ्वी)

क्वचिद् व्रजति कामिनीरतिसमुत्थसौख्यं जनः।
क्वचिद् द्रविणरक्षणे मतिमिमां च चक्रे पुनः।।
क्वचिज्जिनवरस्य मार्गमुपलभ्य यः पण्डितो।
निजात्मनि रतो भवेद् व्रजति मुक्तिमेतां हि सः।।९।।

(वीरछन्द)

कभी कामिनी के रति-सुख की प्राप्ति हेतु नर करें गमन।
और कभी धन की रक्षा में प्रेरित होता उनका मन॥
जो पण्डित जिनमार्ग प्राप्त कर, निज आतम में रति करें।
वास्तव में वे ही पण्डितगण, मुक्ति-वधू का वरण करें॥९॥

श्लोकार्थ :- मनुष्य, कभी कामिनी के प्रति रति से उत्पन्न होनेवाले सुख की ओर गति करता है और फिर कभी धनरक्षा की बुद्धि करता है। जो पण्डित, कभी जिनवर के मार्ग को प्राप्त करके निज आत्मा में रत हो जाते हैं, वे वास्तव में इस मुक्ति को प्राप्त होते हैं॥९॥

श्लोक-९ पर प्रवचन

क्वचिद् व्रजति कामिनीरतिसमुत्थसौख्यं जनः।
क्वचिद् द्रविणरक्षणे मतिमिमां च चक्रे पुनः।।
क्वचिज्जिनवरस्य मार्गमुपलभ्य यः पण्डितो।
निजात्मनि रतो भवेद् व्रजति मुक्तिमेतां हि सः।।९।।

श्लोकार्थ :- मनुष्य, कभी कामिनी के प्रति रति से उत्पन्न होनेवाले सुख की ओर गति करता है... अनादि का विषय-वासना में मिठास को सुख मानकर अनादि से

मिथ्यादृष्टि जीव उसमें गति करता है। ओहो..हो..! आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द होने पर भी, उस आनन्द का अनादर करके मिथ्यादृष्टि इस कामिनी के प्रति-स्त्री के प्रति, रति-क्रीड़ा में उत्पन्न होते सुख-कल्पना, राग, जहर, दुःख... उस सुख को व्यवहार से लोग कहते हैं, इसलिए कहा है। उसकी ओर गति करते हैं। अरे रे! जो चैतन्य को लूटता है। यहाँ तो धर्म, अर्थ, काम तीन है न? उनमें से काम और अर्थ दो की व्याख्या लेना और दूसरे में मोक्ष का साधन लेना है।

मनुष्य, कभी कामिनी के प्रति रति से उत्पन्न होनेवाले सुख की ओर गति करता है... परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं कि स्त्री का विषय छोड़ा, इसलिए इसे धर्म हो गया, ऐसा नहीं है। शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करे, (पूरी) जिन्दगी बालब्रह्मचारी (रहे), तथापि इसकी दृष्टि अभी पर के ऊपर है। शरीर में ब्रह्मचर्य पालना, देह से ब्रह्मचर्य पालना, यह अभी शुभविकल्प और राग है, धर्म नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

इस रति को भी, इस राग के भाव को छोड़कर आत्मा के आनन्द का अन्तरब्रह्मानन्द, ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का ब्रह्मचर्य - अन्दर रमे, उसे ब्रह्मचर्य कहने में आता है। समझ में आया? स्त्री छोड़ी और ब्रह्मचर्य पालते हैं, इसलिए हम धर्मी हैं... भगवान इनकार करते हैं। आहा..हा..! क्योंकि अन्दर में जो राग उठता है, कि इसे सेवन नहीं करूँ, भोगूँ नहीं—ऐसा विकल्प, उस विकल्प को भी अपना मानता है और उसके साथ व्यभिचार-एकत्व करता है, वह अब्रह्मचारी है। आहा..हा..! समझ में आया? इसलिए कोई कहे कि कामिनी के प्रति का सुख छोड़ते हैं तो अब तो हमारे धर्म होगा न? परन्तु वास्तव में तो जो रागभाव है, उसके साथ एकत्वबुद्धि है, वही व्यभिचार और अब्रह्मचर्य है। आहा..! भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप को पर में कहीं सुखबुद्धि से कल्पना से मानना, वह सब मिथ्यात्वभाव है।

और फिर कभी धनरक्षा की बुद्धि करता है। यह अर्थ लिया, अर्थ। पहला काम लिया था। लक्ष्मी की रक्षा की बुद्धि करता है। **चक्रे** शब्द है न? भाई! इसका अर्थ 'करता है।' चक्रे अर्थात् करता है। अनेकान्त चक्र में से कहाँ से निकाला? ....

मुमुक्षु : किसमें से निकाला?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ 'क्रे' है न? करता है... चक्र बनता होगा? परन्तु च कहाँ से

आया ? मुझे तो शंका पड़ी। चक्रे में च शब्द है न ? चक्रे बनता होगा, परन्तु 'च' कहाँ से आया ? संस्कृत के प्रोफेसर हैं। **चक्रे** है न। करता है।

कभी लक्ष्मी की रक्षा करता है। इसका रूप लिया न! मनुष्य का रूप। आहा..हा..! कभी कामिनी के प्रति प्रेम से भूल गया है, कभी लक्ष्मी के प्रेम में, रक्षा में रह गया, परन्तु आत्मा की रक्षा करने में कभी आया नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

जो पण्डित, कभी जिनवर के मार्ग को प्राप्त करके... आहा..हा..! पण्डित तो उसे कहते हैं, धर्मी और ज्ञानी तो उसे कहते हैं। सब बाहर के चाहे जितने शास्त्र और संस्कृत पढ़े हुए हों, परन्तु पण्डित तो **कभी जिनवर के मार्ग को प्राप्त करके...** वीतराग परमेश्वर ने जो अन्तर का मार्ग निजानन्द निज परमात्मस्वरूप का भान करके श्रद्धा करना, ऐसा जो जिनवर का मार्ग पाकर। अब देखो! क्या पाकर ? **निज आत्मा में रत हो जाते हैं,...** देखो! यह जिनवर का मार्ग।

वीतराग तीर्थंकरदेव परमेश्वर केवली अनन्त परमात्मा हो गये, वर्तमान महाविदेह में सीमन्धर भगवान विराजते हैं, लाखों केवली विराजते हैं। अनन्त हुए, अनन्त होंगे। संख्यात वर्तमान मनुष्यदेह में वर्तते हैं। उन सब भगवन्तों ने मार्ग कहा। कौन सा ? निज आत्मा में रत हो। परद्रव्य—देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार को मानना, वह तो राग है, कहते हैं। भीखाभाई! भारी कठिन काम, भाई! स्त्री के सन्मुख लक्ष्य जाये तो अशुभराग होगा; देव की ओर लक्ष्य जाये तो शुभ होगा। हैं तो दोनों राग। अपने सेठ की ओर लक्ष्य जाये तो पापभाव होगा; गुरु की ओर लक्ष्य जाये तो पुण्यभाव होगा, राग होगा। हैं तो दोनों राग।

यहाँ तो भगवान का मार्ग यह कहा है, निजस्वरूप आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' निजानन्द भगवान... धीरज की बातें हैं, भाई! यह कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा शरीर, वाणी की क्रिया से तो भिन्न; पापभाव से हिंसा, झूठ, चोरी से भिन्न; दया, दान, व्रत, भक्ति भगवान की श्रद्धा आदि राग से भी भिन्न है। आहा..हा..! '**वचनामृत वीतराग के परम शांतरस मूल, औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल...**' सुनते हुए (ऐसा लगे)। अर..र..! ऐसा मार्ग ? ऐसा वीतरागमार्ग होगा ? ऐसा ? कायर का तो कलेजा काँप उठे, ऐसा मार्ग है। पण्डितजी! मार्ग तो ऐसा है भगवान, हों! भले दुनिया न माने और दुनिया इसका विरोध करे, परन्तु मार्ग तो

मार्ग है। मार्ग में कोई दो मत होंगे नहीं। तीन काल में सत्यमार्ग के दो पन्थ नहीं होंगे। आहा..हा..! पण्डित इसे कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदज्ञान करे, वह पण्डित है। व्यवहाररत्नत्रय से भिन्न पड़कर अपने स्वरूप का अनुभव करे, वह पण्डित है। नहीं तो पण्डिय.. पण्डिय.. पण्डिय.. आया है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में। हे पाण्डे.. पाण्डे.. पाण्डे.. छिलके कूटता है, छिलके कूटे हैं। आहा..हा..! बापू! तुझे कण कूटना आया नहीं, भाई! दुनिया चाहे जो कहे परन्तु वस्तु का मार्ग दुनिया से कोई अलग है। जिनवर के मार्ग में तीर्थंकरदेव जैनशासन में (कहते हैं कि) निज आत्मा में रत होना, वह धर्म है। आहा..हा.! है अन्दर? निज.. निज.. शब्द प्रयोग किया है। इसलिए कोई और पर भगवान न समझ ले। वे कहे भगवान की भक्ति की धुन लगाओ, भगवान की भक्ति की धुन.. धुन.. लगावे, वह तो राग है। भक्ति में बराबर एकाकार हो जाना, उसमें निर्जरा होती है। धूल भी नहीं होती, सुन न! पुण्यबन्ध होता है और उसमें कर्ताबुद्धि एकाकार होवे तो मिथ्यात्व होता है। समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री वीतराग। समझ में आया?

जिनवर के मार्ग को प्राप्त करके... अर्थात् जिनवर का मार्ग, वह अनादि का है कि **निज आत्मा में रत हो जाते हैं,...** इतना भगवान अन्दर अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, वह ज्ञान का सागर आत्मा है। अपना स्वरूप जो शुद्ध चिदानन्दध्रुव है, उस निज आत्मा में रत हो, उस सन्मुख एकाग्र हो, उसे यहाँ मोक्ष का मार्ग कहते हैं। जिनवर के मार्ग में उसे मार्ग कहा है। समझ में आया? **वे वास्तव में इस मुक्ति को प्राप्त होते हैं।** लो! क्या कहा यह? दोनों कह दिया कि निज आत्मा में रत होते हैं, वही मोक्षमार्ग और वही मुक्ति को पाते हैं। समझ में आया? शरीर, वाणी, मन भिन्न, देव-गुरु-शास्त्र भिन्न, स्त्री-परिवार भिन्न, सम्मेदशिखर और शत्रुंजय भिन्न। उन पर लक्ष्य जायेगा तो इसे शुभभाव होगा, धर्म नहीं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। इसलिए **निज आत्मा में रत हो जाते हैं,...** देखो! मुनिराज कहते हैं। सन्त आत्मज्ञानी धर्मात्मा भावलिंगी पद्मप्रभमलधारिदेव (कहते हैं)। भगवान आत्मा, जिसमें पुण्य-पाप के विकल्प की भी गन्ध नहीं, जिसमें एक समय की प्रवर्तित व्यक्त पर्याय का प्रवेश नहीं। मगनभाई! आहा..हा..!

स्वरूप में परद्रव्य का तो प्रवेश नहीं; दया, दान के विकल्प, भक्ति आदि का भी प्रवेश नहीं, परन्तु वर्तमान ज्ञान का अंश पर्यायरूप से प्रगट जो अंश है, वह भी ध्रुव नित्य भगवान स्वभाव में उसका प्रवेश नहीं। ऐसे निज आत्मस्वरूप जो त्रिकाली जीवद्रव्य है, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा लीन होना, उसे यहाँ धर्म और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहा..हा..! फिर यह कहते हैं, यह तो निश्चय है, निश्चय... परन्तु व्यवहार? निश्चय अर्थात् सत्य, व्यवहार अर्थात् खोटा। व्यवहार तो दोष है, अपवाद है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : जिसने प्रथम भूमिका में अपना पैर रखा है, उसे.....

पूज्य गुरुदेवश्री : रखा है उसे अर्थात् क्या? ऐसी ज्ञान की समझ होती है, वह अन्दर निमित्तरूप से होती है इतना, परन्तु उसे छोड़कर स्थिर हो, तब उसमें कुछ है नहीं, ऐसा इसका अर्थ है। सीढ़ी पर पैर रखा है, वह छोड़ना या रखना? यह तो जानकर अधिक पूछता है, हों! हमें आता है, ऐसा तो कहना होवे न, खबर तो पड़े न लोगों को। यहाँ तो पन्द्रह वर्ष रहे। यह तो अब सुविधा और शरीर के लिये बाहर घूमते हैं। रोटी-बोटी की सुविधा यहाँ ठीक न हो, वहाँ ठीक हो। घर का मकान है और किराये का पैसा अच्छा आता है, खाये तो भी कम पड़े, ऐसा नहीं, इतने पैसे आते हैं। बस, फिर वहाँ भटके। भाई तो कल कहते थे, नवनीतभाई कहते थे, तुम्हें कहते थे। आहा..हा..! मार्ग तो प्रभु ऐसा है, भाई! कोई व्यक्तिगत की यह बात नहीं है। ओहो..हो..!

वे वास्तव में इस मुक्ति को प्राप्त होते हैं। ऐसा शब्द है न? जो निज भगवान आत्मा में श्रद्धा, ज्ञान और लीनता / रमणता निर्विकल्प करता है, वही जीव मुक्ति को पाता है। वह वास्तव में इस मुक्ति को पाता है, आहा..! दूसरा कोई नहीं पाता। कल्पना माने, माने कि यह हमारे मोक्ष होगा। यह व्रत पाले और तप करें और अपवास करें, धर्म / मुक्ति होगी, परन्तु आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो। अनन्त बार पंच महाव्रत पालन किये, नग्नपना लिया, ब्रह्मचर्य पालन किया, यम-नियम पालन किये, वह तो पुण्य था, राग की क्रिया (थी), वह कहीं धर्म की क्रिया नहीं थी। आहा..हा..! भारी कठिन बात। निज परमात्मा में रत हो, वह वास्तव में इस मुक्ति को प्राप्त करता है।

निजात्मनि रतो भवेद् व्रजति मुक्तिमेतां हि सः। कहो, जेठाभाई! ये दो गाथायें हुईं। अब भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तीसरी गाथा (कहते हैं।)

गाथा-३

णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं।
विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं।।३।।

नियमेन च यत्कार्यं स नियमो ज्ञानदर्शनचारित्रम्।
विपरीतपरिहारार्थं भणितं खलु सारमिति वचनम्।।३।।

अत्र नियमशब्दस्य सारत्वप्रतिपादनद्वारेण स्वभावरत्नत्रयस्वरूपमुक्तम्।

यः सहजपरमपारिणामिकभावस्थितः स्वभावानन्तचतुष्टयात्मकः शुद्धज्ञानचेतनापरिणामः स नियमः। नियमेन च निश्चयेन यत्कार्यं प्रयोजनस्वरूपं ज्ञानदर्शनचारित्रम्।

ज्ञानं तावत् तेषु त्रिषु परद्रव्यनिरवलम्बत्वेन निःशेषतोऽन्तर्मुखयोगशक्तेः सकाशात् निजपरम-तत्त्वपरिज्ञानमुपादेयं भवति।

दर्शनमपि भगवत्परमात्मसुखाभिलाषिणो जीवस्य शुद्धान्तस्तत्त्वविलासजन्मभूमिस्थान-निजशुद्धजीवास्तिकायसमुपजनितपरमश्रद्धानमेव भवति।

चारित्रमपि निश्चयज्ञानदर्शनात्मककारणपरमात्मनि अविचलस्थितिरेव।

अस्य तु नियमशब्दस्य निर्वाणकारणस्य विपरीतपरिहारार्थत्वेन सारमिति भणितं भवति।

जो नियम से कर्तव्य दर्शन-ज्ञान-व्रत यह नियम है।
यह सार पद विपरीत के परिहार हित परिकथित है॥३॥

अन्वयार्थ :—[सः नियमः] नियम, अर्थात् [नियमेन च] नियम से (निश्चित) [यत् कार्यं] जो करनेयोग्य हो वह, अर्थात् [ज्ञानदर्शनचारित्रम्] ज्ञान-दर्शन-चारित्र। [विपरीतपरिहारार्थं] विपरीत के परिहार हेतु से (ज्ञान-दर्शन-चारित्र से विरुद्धभावों का त्याग करने के लिए) [खलु] वास्तव में [सारम् इति वचनम्] 'सार' ऐसा वचन [भणितम्] कहा है।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में), 'नियम' शब्द को 'सार' शब्द क्यों लगाया है, उसके प्रतिपादन द्वारा स्वभावरत्नत्रय का स्वरूप कहा है।

जो सहज परम-पारिणामिकभाव[१] से स्थित स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक शुद्धज्ञानचेतना -परिणाम[२], सो नियम[३] (कारणनियम) है। नियम (कार्यनियम), अर्थात् निश्चय से (निश्चित) जो करनेयोग्य-प्रयोजनस्वरूप हो वह, अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र। इन तीनों में से प्रत्येक का स्वरूप कहा जाता है — (१) परद्रव्य का अवलम्बन लिए बिना निःशेषरूप से अन्तर्मुख योगशक्ति में उपादेय (उपयोग को सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख करके ग्रहण करनेयोग्य) — ऐसा जो निज परमतत्त्व का परिज्ञान (जानना) सो ज्ञान है। (२) भगवान परमात्मा के सुखाभिलाषी जीव को शुद्ध अन्तःतत्व के विलास[४] का जन्मभूमिस्थान जो निज शुद्ध जीवास्तिकाय, उससे उत्पन्न होनेवाला जो परम श्रद्धान, वही दर्शन है। (३) निश्चयज्ञानदर्शनात्मक कारणपरमात्मा में अविचल स्थिति (निश्चलरूप से लीन रहना) ही चारित्र है। यह ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप नियम निर्वाण का कारण[५] है। उस 'नियम' शब्द को विपरीत[६] के परिहार हेतु 'सार' शब्द जोड़ा गया है।

---

१. इस परम-पारिणामिकभाव में 'पारिणामिक' शब्द होने पर भी वह, उत्पादव्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है तथा पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है; यह परम-पारिणामिकभाव तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है और द्रव्यार्थिकनय का विषय है। (विशेष के लिए हिन्दी समयसार, गाथा ३२०, श्री जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका और बृहद्-द्रव्यसंग्रह, गाथा १३ की टीका देखो।)

२. इस शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम में 'परिणाम' शब्द होने पर भी वह, उत्पाद-व्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है और पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है; यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है और द्रव्यार्थिकनय का विषय है।

३. यह नियम, सो कारणनियम है क्योंकि वह सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूप कार्यनियम का कारण है। (कारणनियम के आश्रय से कार्यनियम प्रगट होता है।)

४. विलास=क्रीड़ा, आनन्द, मौज।

५. कारण जैसा ही कार्य होता है, इसलिए स्वरूप में स्थिरता करने का अभ्यास ही वास्तव में अनन्त काल तक स्वरूप में स्थिर रह जाने का उपाय है।

६. विपरीत=विरुद्ध। (व्यवहारत्नत्रयरूप विकल्पों को-पराश्रितभावों को छोड़कर, मात्र निर्विकल्प ज्ञानदर्शनचारित्र का ही-शुद्धरत्नत्रय का ही-स्वीकार करने हेतु 'नियम' के साथ 'सार' शब्द जोड़ा है।

७. अनुत्तम=जिससे उत्तम कोई दूसरा नहीं है - ऐसा सर्वोत्तम, सर्व श्रेष्ठ।

गाथा-३ पर प्रवचन

अब, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव (की) तीसरी गाथा—

णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं।
विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं।।३।।

नीचे हरिगीत—

जो नियम से कर्तव्य दर्शन-ज्ञान-व्रत यह नियम है।
यह सार पद विपरीत के परिहार हित परिकथित है॥३॥

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के शब्द। नीचे उनका हरिगीत था, अपने पण्डितजी का बनाया हुआ, शब्दार्थ - शब्द प्रमाण (अर्थ किया है।) अब तीसरी गाथा का अन्वयार्थ लेते हैं। **नियम, अर्थात् नियम से (निश्चित) जो करनेयोग्य हो वह,...** नियम अर्थात् निश्चय से करनेयोग्य हो वह। **अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र।** लो! यह नियम है। आत्मा के स्वरूप का-शुद्ध आनन्द का-अनुभव, उसकी प्रतीति और उसकी लीनता, यह नियम है और यह निश्चय से करनेयोग्य है। यह करने का आया, ऐई! देवानुप्रिया! कल कहता था न? यह करना आया (नहीं)। यह करना आया, देखो!

णियमेण य जं कज्जं नियम से करनेयोग्य हो तो भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु का अन्तर में ज्ञान, अन्तर्दृष्टि और अन्तरलीनता, वह निश्चय से करनेयोग्य है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह करनेयोग्य नहीं। आ जाता है, उसे जाननेयोग्य है। समझ में आया? आहा..हा..! गजब काम। ज्ञान, दर्शन और चारित्र, वह नियम है। देखो! नियम उसे कहते हैं कि जो नियम से करनेयोग्य हो, उसे नियम कहते हैं; और वह नियम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निज आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं।

विपरीत के परिहार हेतु से (ज्ञान-दर्शन-चारित्र से विरुद्धभावों का त्याग करने के लिए).... व्यवहार के त्याग (के लिये)। व्यवहाररत्नत्रय विकल्प है, दुःखरूप है, बन्धरूप है। उसके **(त्याग करने के लिए) वास्तव में 'सार' ऐसा वचन कहा है।**

नियमसार। इस शास्त्र का नाम नियमसार है। कुन्दकुन्दाचार्यकृत। नियम अर्थात् निश्चय से करनेयोग्य, ऐसा आत्मा का परमानन्द स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव, वह निश्चय से निर्विकल्प दशा करनेयोग्य है, लो! करनेयोग्य तो यह आया। क्या करना? यह करना।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यह करने से सुखी; विपरीत करने से दुःखी। कहो, समझ में आया? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य के सीधे वचन सादा, सरल (वचन हैं)। पंच महाव्रतधारी, जंगल में बसनेवाले, आत्मध्यानी भावलिंगी सन्त कहते हैं कि नियम से जीव को करनेयोग्य हो तो वह नियम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। तथा उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में व्यवहार के परिहार के लिये नियम के साथ सार कहा गया है। आहा..हा..! समझ में आया? नियमसार शब्द है न?

मुमुक्षु : समयसार में.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है। समयसार अर्थात् द्रव्य, भावकर्म, नोकर्मरहित। समय अर्थात् आत्मा। कैसा? जिसमें जड़कर्म, नोकर्म शरीर और पुण्य-पाप के भावकर्म, इनसे रहित, उसका नाम समयसार है। यह मोक्षमार्ग (कहा)। नियमसार, यह तो पर्याय की बात है, वह द्रव्य की बात थी। समझ में आया?

नियमसार, मोक्षमार्ग वह पर्याय है। क्या? मोक्षमार्ग पर्याय है, शुद्धपर्याय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा की शुद्ध पर्याय-अवस्था है। द्रव्य त्रिकाली शुद्ध है, वस्तु त्रिकाली शुद्ध ध्रुव है भगवान। उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प शुद्ध पर्याय है, वह पर्याय मोक्ष का कारण है। मोक्ष भी पर्याय है। सार ऐसा, विपरीतता के त्याग के लिये कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि जोड़ा हुआ शब्द है। आहा..हा..! कितनी बात की! बहुत सरस।

टीका :— यहाँ (इस गाथा में), 'नियम' शब्द को 'सार' शब्द क्यों लगाया है, उसके प्रतिपादन द्वारा स्वभावरत्नत्रय का स्वरूप कहा है। देखो! उसमें निश्चय कहा था, निरपेक्ष। स्वभावरत्नत्रय, ऐसा कहकर दो भाग पाड़ते हैं। आत्मा अखण्ड आनन्द, ध्रुव शुद्ध है। उसके स्वभाव में से प्रगट हुई श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति / चारित्र, उस निर्विकल्प वीतरागीदशा को यहाँ स्वभावरत्नत्रय कहा गया है। जो आत्मा की वीतरागी पर्याय है। स्वभावरत्नत्रय का अर्थ हुआ कि जो बाह्य का व्यवहाररत्नत्रय है, वह विभावरत्नत्रय

है। क्या पण्डितजी! आहा..हा..! गजब काम, भाई! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, विभाव श्रद्धा है। शास्त्र का ज्ञान, विभावज्ञान है और पंच महाव्रत का पालन, वह विभाव / रागभाव है। विभावभाव है; वह स्वभावभाव नहीं। देखो! यह कहते हैं न? देखो!

'नियम' शब्द को 'सार' शब्द क्यों लगाया है, उसके प्रतिपादन द्वारा स्वभावरत्नत्रय का स्वरूप कहा है। व्यवहाररत्नत्रय के अभाव द्वारा शुद्ध रत्नत्रय स्वभाव का स्वरूप यहाँ कहा है। इसका अभाव करने को। गजब बात, भाई! व्यवहार के ग्रन्थों में ऐसी बातें आवें न कि लोग वह सुनकर उलझ जाते हैं। व्यवहावर के ग्रन्थ में आवे कि ऐसा करना, ऐसा करना ऐसा आवे, लो! व्यवहारनय अन्यथा कथन करता है। जैसा वस्तु का स्वरूप है, उससे विपरीत (कथन) करता है। समझ में आया?

जो सहज परम-पारिणामिकभाव से स्थित स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम, सो नियम (कारणनियम) है। जरा सूक्ष्म बात है। परमपारिणामिक भाव से, यह त्रिकाल। परमपारिणामिक सहज त्रिकालभाव। एक समय की वर्तमान पर्याय के अतिरिक्त का स्वाभाविक परमपारिणामिक अर्थात् जिसे कर्म के निमित्त की सद्भाव की अपेक्षा या अभाव की अपेक्षा रहित वह चीज़ है, ऐसा परमपारिणामिक भाव से स्थित अन्तरस्वरूप का, **स्वभाव, अनन्त चतुष्टयात्मक...** अन्तरस्वरूप ध्रुव भगवान आत्मा में अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, यह अन्दर ध्रुव में स्थित है। अरे! यह क्या? परमस्वभावभाव में ये चार बोल स्थित-ध्रुव हैं। समझ में आया?

वह **शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम,...** ऐसा जो त्रिकाली शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम, वह नियम है। त्रिकाली शुद्धज्ञानचेतना, त्रिकाली शुद्धज्ञानचेतना - ध्रुव, उसे यहाँ नियम—कारणरूप नियम कहा गया है। मोक्ष का मार्ग तो कार्य नियम है न, यह? उसका कारण यह त्रिकाली वस्तु है, ऐसा सिद्ध करना है। आहा..हा..! अर्थ है न नीचे।

इस परम-पारिणामिकभाव में 'पारिणामिक' शब्द होने पर भी वह, उत्पादव्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है.... मोक्ष का मार्ग है और सिद्धपद है, वह तो उत्पन्न होता है और संसारपर्याय का नाश होता है। अथवा निश्चयमोक्षमार्ग जो रत्नत्रय निश्चय है, वीतरागीदशा है, उस पर्याय का भी नाश होता है और मोक्ष की पर्याय

उत्पन्न होती है। वे उत्पाद-व्यय इस पारिणामिकभाव में नहीं हैं। ये उत्पाद-व्यय जो पर्याय / अवस्था / दशा है, वह तो एक समय की दशा में उत्पाद-व्यय है, त्रिकाली ध्रुव में उत्पाद-व्यय है नहीं। आहा.हा.. ! उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् - आता है न ? पूरा द्रव्य— प्रमाण के विषय का द्रव्य। यहाँ तो निश्चयनय के विषय का द्रव्य। जो उत्पाद-व्यय का अंश है, वह तो व्यवहार है; त्रिकाली ध्रुव, वह निश्चय है। अभी तो समझना कठिन। आहा..हा.. ! बाहर की बातों में ऐसा रचपच गया है कि उसमें अन्तर की सत्य बातें सुनने का भी अवसर नहीं रहा। यह मार्ग नहीं, ऐसा (कहते हैं)। यह तो निश्चय एकान्त है, ऐसा करके निकाल दिया। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

आचार्य कहते हैं, पद्मप्रभमलधारिदेव टीका / अर्थ करते हैं। नियम है न ? मोक्ष का मार्ग, उसमें से निश्चय नियम निकाला। मोक्ष का मार्ग नियम कहा न ? निर्विकल्प वीतरागीदशा, वह मोक्ष का मार्ग है। वह तो पर्याय है। तब यहाँ द्रव्य को नियमरूप से कारण निकाला (कहा)। समझ में आया ? शब्द तो शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम शब्द पड़ा है, शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम। किन्तु वह परिणाम उत्पाद-व्ययवाला नहीं। राग की उत्पत्ति हो और नाश हो, वह अलग वस्तु है। सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति हो और वह सम्यग्ज्ञान विशेष उत्पन्न हो और पहले का नाश हो, वह अलग वस्तु है। यह उत्पादव्ययरहित त्रिकाली ध्रुव, उसे भी शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम कहा गया है। गजब बात है, भाई ! समझ में आया ? यह क्या होगा ऐसा मार्ग ?

पद्मप्रभमलधारिदेव टीका करते हैं, देखो न ! वह नियम है। **उत्पादव्ययरूप परिणाम को सूचित करने के लिए नहीं है तथा पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है;...** यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम, वह वर्तमान पर्यायनय का विषय नहीं है, वह त्रिकाली ध्रुव द्रव्यार्थिकनय का विषय है। यह क्या विषय है, यह तो आश्चर्यकारी लगे। प्रचलित विषय नहीं न, अभी यह धर्म का विषय नहीं चलता। बाहर की क्रियाकाण्ड की प्रवृत्ति जो अधर्म और राग, उसे धर्म मानकर लोग प्रवृत्ति कर रहे हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : देशनालब्धि कही न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : देशनालब्धि कही, इसलिए क्या ? इसलिए ऐसा कि समझने में गुरु का निमित्त चाहिए न, ऐसा कहते हैं, परन्तु उससे पहले यहाँ सुन लिया है न पन्द्रह

वर्ष ? देखा ! यह क्या कहा ?.... क्या कहलाता है ? झरिया, झरिया में देशनालब्धि मिलती होगी, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो सुनी हुई बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसमें पन्द्रह वर्ष पहले सुना नहीं ? ऐसी खबर नहीं ? यह नहीं कहते ?

यहाँ तो अभी एक नियम को सिद्ध करना है, उस पुस्तक का नाम नियमसार है। ध्यान रखना ! अब नियम अर्थात् निश्चय से करनेयोग्य आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति। श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र अर्थात् अन्दर वस्तु के स्वरूप में रमना, श्रद्धा, ज्ञान (करना), वह नियम; और सार अर्थात् व्यवहार के अभाव के लिये (सार) शब्द कहा है। अब इस नियम को सिद्ध करने को, यह तो पर्याय का नियम कहा। अब, यह पर्याय का नियम कहाँ से प्रगट होता है ? त्रिकाली द्रव्य नियम है, उसमें से प्रगट होता है। समझ में आया ? पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका ऐसी है। साधारण लोग इनकार करते हैं, ऐसी टीका तो... आहा..हा.. !

मुमुक्षु : जो सीधा था, वह गड़बड़वाला कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्लिष्ट किया, लोग ऐसा कहते हैं। भाई ! तुम्हें खबर नहीं, क्योंकि जहाँ मूल पाठ में ही निज परमात्मा की श्रद्धा, ऐसा जो आता है, इसलिए कहते हैं कि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सच्चा निश्चय, वह नियम है और वह करनेयोग्य कहा। अब यह तो पर्याय का नियम कहा परन्तु नियम का कोई कारण त्रिकाली चीज़ है या नहीं ? तो कहते हैं, त्रिकाली अन्दर में शुद्धज्ञानचेतनापरिणामरूपी भाव जो त्रिकाली ध्रुव है, उसमें उत्पाद-व्ययपरिणाम नहीं है। यह मोक्ष के मार्ग के परिणाम प्रगट हुए, वे भी उसमें नहीं हैं। स्वरूपचन्दभाई !

मुमुक्षु : मूल में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल में कहाँ है, वह तो ध्रुव है। उसे निश्चयनियम कहा जाता है। परमनियम अर्थात् त्रिकाली नियम। समझ में आया ?

यह परम-पारिणामिकभाव तो उत्पाद-व्ययनिरपेक्ष एकरूप है... देखो ! जो मोक्ष

का मार्ग प्रगट होता है, वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी श्रद्धा अर्थात् विकल्परहित आत्मा की निर्विकल्प श्रद्धा, आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान, आत्मा का चारित्र, वह पर्यायनय का विषय है और यह जो शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम कहे, वे द्रव्यार्थिकनय का विषय है। वह उत्पादव्ययनिरपेक्ष एकरूप त्रिकाल है। पर्याय है, वीतरागी पर्याय, वह निश्चय से करनेयोग्य कही परन्तु वह तो पर्याय है, वस्तु है वह तो है ही, उसे करनेयोग्य या करने-फरने का कुछ है नहीं। समझ में आया?

और द्रव्यार्थिकनय का विषय है। देखो! कौन? यह शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम। कौन? जो परम स्वभाविक में स्थित, ऐसा स्वभाव अनन्त चतुष्टयात्मक शुद्धज्ञानचेतना-परिणाम। गजब! यह तो वस्तु त्रिकाली ध्रुव की दृष्टि करने का वह विषय है। यहाँ तो व्यवहार मोक्षमार्ग, वह तो मोक्षमार्ग है नहीं क्योंकि विकल्प और राग है। परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग एक समय की पर्याय है, वह वर्तमान पर्याय व्यवहारनय का विषय है, भाई! लो! ओहो..हो..! वह व्यवहार जो व्यवहाररत्नत्रय, वह व्यवहारनय का विषय तो यहाँ है ही नहीं, उसकी बात ही नहीं। मात्र भगवान आत्मा निजपरमात्मस्वरूप जो त्रिकाल है, उसकी अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागीदशा हो, वह भी पर्यायनय का विषय है, व्यवहारनय का विषय है। देखो! यह व्यवहारनय। ए... चन्दुभाई! निश्चयमोक्षमार्ग है, वह व्यवहारनय का विषय है। सद्भूतव्यवहार है न! आहा..हा..! अब वह कहीं तेरे विकल्प का व्यवहार तो कहीं रह गया। देह की क्रिया, वह तो जड़ की क्रिया, वह तो आत्मा में कहाँ थी! समझ में आया?

यहाँ पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि सन्त दिगम्बर, जंगलवासी आत्मज्ञानी-ध्यानी, मोक्षमार्ग में थे। वे कहते हैं कि भाई! यह कुन्दकुन्दाचार्य ने नियमसार कहा अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि नियम अर्थात् क्या? निश्चय से आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय करनेयोग्य है, उसे नियम कहते हैं और सार अर्थात् उसमें विकल्प का अभाव, व्यवहार का अभाव सूचित करने के लिये सार शब्द कहा है।

अब उस नियमसार के भाव में से इन्होंने निकाला कि वह नियमसार तो पर्यायनय का विषय नियम है, उसमें उत्पाद-व्ययवाली दशा हुई वह तो। ध्रुव त्रिकाली वस्तु है वह? ओहो..हो..! मोक्षमार्ग व्यवहारनय का विषय-पर्यायार्थिकनय का विषय कहा न? यह ध्रुव

पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है। आहा..हा..! पहले तो अभी कान में पड़ने पर अटपटा जैसा लगे। आहा..हा..! जैन की सच्ची कथनी ही घिस गयी और मार्ग रह गया ऊपर का थोथा (छिलका)। आहा..हा..! ऊपर है यह। उसमें लिखा है न थोथा। रवजीभाई ने लिखा है। यह कान में सत्य सुने, वह कान, बाकी कोड़ा। यह सिर सच्चा समझे और हाँ करे, वह सिर बाकी थोथा, सिर नहीं तो थोथा। ऐसा उसमें आत्मधर्म में कुछ आया है। कहीं पढ़ा है।

(विशेष के लिए हिन्दी समयसार, गाथा ३२०, श्री जयसेनाचार्यदेव की संस्कृत टीका देखो।) ३२० गाथा न? अपने व्याख्यान हो गये हैं। बहुत सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म। ३२० गाथा, जयसेनाचार्य की टीका अलौकिक बात है। जिसके त्रिकाली परम स्वभाव में पर्याय की गन्ध नहीं, पर्याय जिसमें स्पर्शती नहीं। आहा..हा..! गजब वस्तु, भाई! मोक्ष का मार्ग वह व्यवहार है, सच्चा मोक्षमार्ग, (वह भी व्यवहार है), हों! वह विकल्प (शुभभाव) वह तो नहीं, जिसमें तो है ही नहीं, उसकी बात की। यह तो सच्चा मोक्षमार्ग-आत्मा के आनन्द का अनुभव और उसका ज्ञान और श्रद्धा, वह भी पर्याय है; इसलिए व्यवहारनय का विषय है, परन्तु यह जो शुद्धज्ञानचेतनापरिणाम है, त्रिकाली वह निश्चयनय का विषय है। इसकी विशेष व्याख्या आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)